समयसार, गाथा १५४ **अब फिर भी, पुण्यकर्म के पक्षपाती को..** १५४ (गाथा की) ऊपर की लाईन। **फिर भी, पुण्यकर्म के पक्षपाती को..** अर्थात् कि शुभभाव से

धर्म होता है, ऐसा पक्षपाती प्राणी। आहा! उसका जिसे पक्ष है कि उससे धर्म होता है, उसे **समझाने के लिये उसका दोष बतलाते हैं:-** आहा!

परमट्ठबाहिरा जे ते अण्णाणेण पुण्णमिच्छंति।
संसार-गमण-हेदुं पि मोक्ख-हेदुं अजाणंता।।१५४।।

परमार्थबाहिर जीवगण, जानें न हेतू मोक्ष का।
अज्ञान से वे पुण्य इच्छें, हेतु जो संसार का।।१५४।।

आहा! पुण्य-पाप अधिकार है न? टीका - **समस्त कर्मों के पक्ष का नाश करने से..** शुभ और अशुभभाव, ऐसे जो भावकर्म, उनके पक्ष का नाश करने से। आहाहा! **उत्पन्न होनेवाले आत्मलाभ..** शुभ और अशुभभाव का नाश करने से (कि) जो कर्म का पक्ष है, अर्थात् विकारी पक्ष है, उसका नाश करने से **उत्पन्न होनेवाले आत्मलाभ..** (अर्थात्) **(निजस्वरूप की प्राप्ति)..** आत्मा अर्थात् निजस्वरूप। लाभ (अर्थात्) प्राप्ति। आहाहा! ऐसे **आत्मलाभस्वरूप मोक्ष को..** आत्मलाभस्वरूप मोक्ष को **इस जगत् में कितने ही जीव चाहते हुए भी,..** कितने ही जीव चाहते हैं। आहाहा! तो भी **मोक्ष की कारणभूत सामायिक की..** मोक्ष का कारण तो सामायिक है। पुण्य-पाप के भाव, वह कोई (मोक्ष का) कारण नहीं है। आहाहा!

सामायिक की-जो (सामायिक).. सामायिक किसे कहना? कहते हैं। जो **सम्यक्दर्शन-ज्ञान-चारित्रस्वभाववाले..** निश्चय जो सम्यग्दर्शन (अर्थात्) स्वभाव जो चैतन्य प्रभु, उसका दर्शन / प्रतीति, उसका ज्ञान और उसमें रमणता। ऐसे जो **सम्यक्दर्शन-ज्ञान-चारित्रस्वभाववाले परमार्थभूत ज्ञान की भवनमात्र है,...** सामायिक तो उसे कहते हैं, कहते हैं। सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्रस्वभाववाले परमार्थभूत आत्मा अर्थात् (कि) ज्ञान। ज्ञान का परमार्थ से सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्ररूप होना, परिणमना, वह सामायिक है। लो, यह सामायिक की व्याख्या!

अन्तर में भगवान आत्मा पुण्य-पाप के परिणाम से भिन्न है। अन्तर अनन्त गुण का सागर आत्मा, उसके प्रति सन्मुख होकर निर्विकल्प सम्यग्दर्शन, निर्विकल्प स्वज्ञान और निर्विकल्प स्वरूप की चारित्र की रमणता (प्रगट होती है), वह सम्यग्दर्शन-ज्ञान-

चारित्ररूप सामायिक है। ऐसे परमार्थभूत ज्ञान का होना। आहाहा! ऐसा परमार्थभूत भगवान आत्मा, उसका आत्मा के शुद्ध स्वभावरूप होना। जैसा उसका स्वरूप-स्वभाव है, उस प्रकार से उसकी दशा में शुद्धस्वभाव का परिणमन होना। आहा!

एकाग्रतालक्षणयुक्त है,.. कैसा है वह परमार्थभूत ज्ञान का भवन?—कि एकाग्रता-शुद्धस्वरूप में एकाग्रता है। शुभाशुभभाव की एकाग्रता छूट गयी है और चैतन्यस्वभाव, ऐसे शुद्ध प्रभु में एकाग्रता लक्षणवाला (भवन), वह सामायिक है। दो प्रकार कहे—एक दर्शन-ज्ञान स्वभाववाले ज्ञान का होना अर्थात् एकाग्रता लक्षणवाला है। आहाहा! शुद्धस्वरूप में एकाग्रतालक्षणवाला है।

और समयसारस्वरूप है... वह सामायिक तो समयसारस्वरूप है। आहाहा! समयसार जो त्रिकाल है, उसका वर्तमान में सम्यग्दर्शन-ज्ञानरूप शुद्ध निश्चयरूप होना, उसका नाम समयसार है। आहाहा! और उस समयसारस्वरूप एकाग्रतालक्षण दर्शन-ज्ञान-चारित्र का आत्मस्वरूप का होना-भवन, उसका नाम सामायिक है। लो, यह सामायिक की ऐसी व्याख्या! यहाँ तो कुछ समझे बिना सामायिक और प्रौषध और (कुछ किया करते हैं)। आहाहा!

मुमुक्षु : सातवें गुणस्थान के बाद की बात है न?

पूज्य गुरुदेवश्री : यह तो मुनि की मुख्यता से बात है, सामायिक की बात है। व्यवहार-फ्यवहार का यहाँ प्रश्न है नहीं। व्यवहार, वह राग है। ऊपर कहा नहीं? उसके पक्षपाती को समझाने के लिए दोष बताते हैं। आहाहा! जो शुभभाव का पक्षपाती है, उसे दोष बतलाते हैं कि वह तो राग है, विकार है; वह सामायिक नहीं। आहाहा! सामायिक तो आत्मा अन्दर पूर्णानन्द प्रभु का निर्विकल्प दर्शन, उसका राग के अवलम्बनरहित आत्मा का ज्ञान और आत्मा में चरना, आनन्द में रमना - ऐसा जो चारित्र, (वह सामायिक है)। दर्शन-ज्ञान-चारित्र लक्षणवाला (कहा) है न? **परमार्थभूत ज्ञान..** अर्थात् आत्मा का होना, अर्थात् एकाग्रता लक्षणवाला। शुद्ध चैतन्यस्वरूप में एकाग्रता लक्षणवाला। अर्थात् कि वह समयसारस्वरूप है। आहाहा! ऐसी सामायिक।

यहाँ तो कहते हैं कि ऐसी प्रतिज्ञा लेने पर भी। ऐसा कहेंगे। **उसकी-प्रतिज्ञा लेकर**

भी;.. प्रतिज्ञा तो यह है। प्रतिज्ञा जो लेते हैं, वह प्रतिज्ञा तो यह है कि शुद्धस्वरूप भगवान आत्मा, शुभ दया-दान-व्रत-भक्ति के परिणाम से भी भिन्न है। ऐसे शुद्धस्वरूप का दर्शन-ज्ञान और चारित्र, ऐसा आत्मा का होना; उसरूप स्वभाव है, उसका उस प्रकार से होना अर्थात् उसमें एकाग्रता लक्षण - ऐसा जो समयसारस्वरूप, उसकी प्रतिज्ञा लेकर भी। आहाहा! प्रतिज्ञा उसकी—सामायिक की—लेता है, परन्तु ऐसी सामायिक की। आहाहा!

दुरन्त कर्मचक्र को पार करने की नपुंसकता.. आहाहा! परन्तु जो शुभभाव है, पुण्य है, बन्धन का कारण है। ऐसा उसका अन्त लाना। कर्मचक्र अर्थात् शुभ और अशुभ दोनों, वह कर्मचक्र है। चाहे तो अशुभभाव हो या चाहे तो शुभ हो; हैं दोनों कर्मचक्र। वह कोई आत्मा का स्वरूप नहीं है। **कर्मचक्र को पार करने की नपुंसकता..** देखा? आहाहा! 'क्लीब' शब्द है।

शुभभाव से पार उतरने की नामर्दाई (अर्थात्) नपुंसक है, (ऐसा) कहते हैं। आहाहा! जिसका वीर्य इन शुभभाव—दया, दान, व्रत में रुक गया है, वह नामर्द है; वह मर्द नहीं है, वह पुरुष नहीं है; वह नपुंसक है, कहते हैं। आहाहा! जैसे नपुंसक को वीर्य नहीं होता और पुत्र नहीं होता; वैसे शुभभाव में धर्म की प्रजा नहीं होती। आहाहा! नपुंसकता! पहले ३९ से ४३ (गाथा) आ गयी है और (यह) १५४, दोनों जगह 'क्लीब' शब्द है। पाठ में **कर्मचक्रोत्तरणक्लीबतया** (ऐसा है)। पुण्य और पाप के दोनों भाव, उनसे पार उतरने की नपुंसकता है, नामर्दाई है। आहाहा! मर्द तो उसे कहते हैं कि इन शुभाशुभभाव से रहित आत्मा के शुद्धस्वरूप का परिणमन करे, उसे मर्द कहते हैं। आहाहा! ऐसी बात है।

उस दुरंत कर्मचक्र को पार उतरने की क्लीबता के कारण-नपुंसकता के कारण - नामर्दाई - **(असमर्थता के कारण)** आहाहा! **परमार्थभूत ज्ञान..** अर्थात् आत्मा। परमार्थभूत आत्मस्वभाव का अनुभवमात्र। आत्मस्वभाव का अनुभवमात्र। उसमें कोई शुभभाव, दया, दान, व्रत का भाव आवे नहीं। आहाहा! **जो सामायिक..** कैसी (सामायिक)? इतने तक (लिया, वैसी)। पहले लिया—दर्शन-ज्ञान-चारित्र स्वभाव (वाले) परमार्थभूत आत्मा का होना, अन्तर में एकाग्रता होना, समयसाररूप रहना, कर्मचक्र के पार को उतरकर परमार्थभूत ज्ञान के अनुभवन (मात्र रहना)। आहाहा!

अन्तर भगवान पूर्ण आनन्द अतीन्द्रिय अनन्त गुण का समुद्र भरा है। उसमें जाने को असमर्थ और नपुंसकता के कारण। उसका जो आत्मस्वभाव है, उसका परिणमन होना, ऐसी जो सामायिक। आहाहा! **सामायिकस्वरूप आत्मस्वभाव..** आहाहा! इतनी (बात) ली है। वह सामायिकस्वरूप कैसा है?—कि वह तो आत्मा का स्वभाव है। आहाहा! दया, दान, व्रत, तप का भाव, वह कहीं आत्मस्वरूप नहीं है। आहा! वह सामायिकस्वरूप जो अन्दर पुण्य और पाप के भावरहित, चैतन्यस्वभाव जो ध्रुव है, जो स्वभाव से भरपूर ध्रुव है, ऐसे ध्रुवस्वभाव को नहीं पाते हुए, ऐसे **आत्मस्वभाव को न प्राप्त होते हुए,..** आहाहा!

जिनके अत्यन्त स्थूल संक्लेशपरिणामरूप कर्म निवृत्त हुए हैं.. (अर्थात्) उसने अशुभभाव छोड़ा है। आहाहा! हिंसा, झूठ, चोरी, विषय-वासना, भोग, यह अशुभभाव उसने छोड़ा है और **अत्यन्त स्थूल विशुद्धपरिणामरूप कर्म प्रवर्त रहे हैं...** आहाहा! यह अशुभभाव भी अत्यन्त संक्लेश स्थूल है। इससे निवृत्त हुआ है परन्तु अत्यन्त स्थूल ऐसे विशुद्ध परिणाम में प्रवर्तता है। आहाहा! इसलिए वह धर्म में (अर्थात्) सामायिक में नहीं आया। आहाहा! अब, ऐसे सामायिक! यह तो आठ-आठ वर्ष के लड़के भी सामायिक करे और फिर उन्हें कुछ दे। रुपया या दो-आठ आने (दे)। हो गयी सामायिक! अरे! प्रभु! आहाहा!

सामायिक तो उसे कहते हैं कि जो आत्मा पुण्य-पाप के भावरहित और पूर्ण स्वभाव से भरपूर भगवान का सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्ररूप आत्मस्वभाव का होना... आहाहा! और उसमें एकाग्र होना, ऐसा जो समयसारस्वरूप, (उसे सामायिक कहते हैं)। आहाहा! उसे नहीं पहुँचते हुए **सामायिकस्वरूप आत्मस्वभाव को न प्राप्त होते हुए,..** आहाहा!

आहाहा! **जिनके अत्यन्त स्थूल संक्लेशपरिणामरूप कर्म..** कर्म अर्थात् परिणाम, भावकर्म। यहाँ कर्म शब्द में कितने ही यह लेते हैं कि जड़कर्म.. जड़कर्म.. जड़कर्म। पहले से जड़कर्म लिया है न! परन्तु उस जड़कर्म के साथ भावकर्म है, वह सब कर्म में जाते हैं। आहाहा! संक्लेश, अत्यन्त स्थूल, संक्लेश अशुभपरिणाम के कार्य से, परिणाम से निवृत्त है, परन्तु **अत्यन्त स्थूल विशुद्धपरिणाम..** आहाहा! शुभभाव अत्यन्त स्थूल

विशुद्धपरिणाम है, अत्यन्त स्थूल है; भगवान (आत्मा) सूक्ष्म है। उस विशुद्ध-शुभभाव से भिन्न अन्तर सूक्ष्म तत्त्व अरूपी सूक्ष्म है। आहाहा!

जिसे अत्यन्त संक्लेशपरिणाम (होते थे), उनमें से निवृत्त हुआ। दुकान छोड़ दी, धन्धा छोड़ दिया, स्त्री छोड़ी, विषय छोड़े, भोग छोड़े, परन्तु उससे क्या? कहते हैं। किन्तु अत्यन्त स्थूल जो विशुद्ध परिणाम है, उनमें उसने माना है और उनमें अटक गया है। आहाहा! उसमें वह प्रवर्तता है, ऐसा है न?

अत्यन्त स्थूल विशुद्ध.. अर्थात् शुभपरिणामरूप भाव, ऐसे कार्य, उसमें इसके परिणाम प्रवर्तते हैं। आहाहा! **ऐसे वे, कर्म के अनुभव के गुरुत्व-लघुत्व की प्राप्तिमात्र से..** वह तो कर्म का अनुभव है। गुरु (अर्थात्) अशुभभाव। वह गुरुरूप से भारी थे और शुभभाव जरा लघु था, परन्तु हैं दोनों कर्म। शुभभाव है भले लघु, परन्तु है कर्मचक्र। अशुभभाव स्थूल है, परन्तु है कर्मचक्र। दोनों कर्मचक्र है। आहाहा! ऐसा सुनने को मिलना कठिन पड़ता है। हो गयी सामायिक की और यह किया, वह किया, दो घड़ी बैठे, णमो अरिहंताणं तिकखुत्तो, सामायिक (हो गयी)।

मुमुक्षु : उसमें छह काय के जीव की रक्षा होती है।

पूज्य गुरुदेवश्री : किसकी रक्षा? तेरी रक्षा तूने की नहीं। पर की रक्षा कर सकता नहीं। पर की रक्षा कर नहीं सकता, क्योंकि प्रत्येक द्रव्य अपनी-अपनी पर्याय को प्राप्त होता है। यह तो अपने आ गया है। प्रत्येक द्रव्य वर्तमान अपनी पर्याय को पहुँचता है, प्राप्त करता है, पाता है। वह कहीं दूसरे की पर्याय को प्राप्त करता है, दूसरे की पर्याय को मदद करता है, ऐसा नहीं है। आहाहा!

मुमुक्षु : छह काय का रक्षक कहने में आता है न?

पूज्य गुरुदेवश्री : यह सब बातें हैं। छह काय में स्वयं आत्मा है या नहीं? आत्मा का रक्षक! उसमें छह काय के ग्वाल, छह काय के पियर। ऐ... चिमनभाई! संवत्सरी के पश्चात् एक-दूसरे सगे-सम्बन्धी को पत्र लिखते हैं न! छह काय के रक्षक, छह काय के पियर, छह काय के ग्वाल, ऐसा लिखते थे। आहाहा! छह काय में यह भगवान आत्मा है या नहीं?

मुमुक्षु : आत्मा में काय कहाँ है ?

पूज्य गुरुदेवश्री : यह असंख्य प्रदेशी काय है। आहाहा! असंख्य प्रदेशी काय है, ऐसा पाठ है। असंख्य प्रदेशी को काय, वही इसे काय कहते हैं। आहाहा! वह भी घन है। आहाहा! परमाणु और कालाणु को काय नहीं है। यह (आत्मा) तो असंख्य प्रदेशी काय है। आहाहा!

निर्मलानन्द अनन्त आनन्द का धाम भगवान... आहाहा! उसके भाव को न प्राप्त करते हुए स्थूल गुरु और लघुपना। अशुभभाव, वह गुरु है और शुभभाव, वह लघु है, परन्तु है कर्म का चक्र, वह कर्म का अनुभव है। पुण्य तथा शुभ और अशुभभाव दोनों हैं कर्म का अनुभव। आत्मा का अनुभव नहीं। आहाहा! उस **गुरुत्व-लघुत्व की प्राप्तिमात्र से ही..** प्राप्तिमात्र से **'ही' सन्तुष्ट चित्त होते हुए..** ऐसा कि हमने कुछ सामायिक की, हमने प्रौषध किये। आहाहा! चौबीस घण्टे में से दो घण्टे बचाये, दो सामायिक की।

हमारे वहाँ बोटाद में चार-चार करते थे। जल्दी उठते, कुँवरजीभाई के साथ। आहाहा! किसे कहना सामायिक ? अभी जिसके देव-गुरु-शास्त्र सच्चे नहीं, फिर उसे सामायिक कैसी ? आहाहा! यह तो सच्चे देव-शास्त्र-गुरु जिसे मिले, उनकी श्रद्धा का भाव, वह भी शुभभाव है, कर्मचक्र का शुभभाव है। आहाहा!

वे **स्थूल लक्षवाले होकर..** आहाहा! क्यों ? - कि अशुभभाव छोड़ा परन्तु शुभभाव में सन्तुष्ट हो गया। सन्तुष्ट चित्तवाला हुआ, इसलिए वह तो स्थूल लक्ष्यवाला है। आहाहा! उसका लक्ष्य शुभपरिणाम स्थूल है, उस पर उसका लक्ष्य है। भगवान आत्मा, शुभपरिणाम से भिन्न सूक्ष्म है, उसके लक्ष्य की इसे खबर नहीं है। आहाहा! अब ऐसी बातें। **स्थूल लक्षवाले होकर (संक्लेशपरिणाम को छोड़ते हुए भी) समस्त कर्मकाण्ड को मूल से नहीं उखाड़ते।** परन्तु यह व्रत-तप, भक्ति और पूजा का भाव शुभभाव है। वह तो कर्म है, वह कर्मचक्र का भाव है। उसे मूल में से, **समस्त कर्मकाण्ड को मूल से नहीं उखाड़ते।** आहाहा! ऐसा मार्ग सुनना कठिन पड़े। यह तो सामायिक की और यह सब घड़ी लेकर बैठते हैं न! महिलाओं ने सामायिक कर डाली और अब पकाने में रुक गयीं। सवेरे उठकर पहले सामायिक की। कहाँ सामायिक थी, बापू!

मिथ्यात्व का पोषण है। आहाहा! कर्मकाण्ड को धर्म मानते हुए वहाँ सन्तुष्ट हो गये हैं। हमने कुछ किया! आहाहा! **समस्त कर्मकाण्ड..** अर्थात् कर्म की क्रियाओं को मूल से **नहीं उखाड़ते।** आहाहा!

इस प्रकार वे, स्वयं अपने अज्ञान से.. किसी कर्म के कारण से नहीं। आहा! **स्वयं अपने अज्ञान से..** आहाहा! ज्ञातादृष्टा के स्वभाव से भरपूर प्रभु को स्वयं अपने अज्ञान से, स्वरूप के अज्ञान से। स्वरूप पूरा बड़ा महाप्रभु है, उसके स्वभाव के अज्ञान से। आहाहा! अनन्त-अनन्त गुण का सागर, गुणधाम प्रभु। ऐसा शुभभाव के समीप विराजता है, उसके अज्ञान के कारण। आहाहा! वह क्या चीज़ है? अन्दर भगवान परमात्मस्वरूप जिनस्वरूप (विराजता है), उसके अज्ञान के कारण। आहाहा! **केवल अशुभकर्म को ही बन्ध का कारण मानकर,..** बस! उस अशुभकर्म को ही कर्म बन्धन का कारण मानकर। **व्रत, नियम, शील, तप इत्यादि..** इत्यादि अर्थात् शुभभाव के असंख्य प्रकार। आहाहा! दया, दान, व्रत, भक्ति, पूजा, गुणस्मरण, प्रभु का स्मरण (आदि)। आहाहा! प्रभु परद्रव्य है, उसका स्मरण भी शुभभाव है। ऐसी बात! वे इत्यादि शुभ कार्य भी **बन्ध का कारण होने पर भी..** वह शुभभाव भी बन्ध का कारण है, वह संसार है। आहाहा! मोक्षस्वरूप प्रभु तो उनसे अन्दर भिन्न है। आहाहा! पहले यह अन्दर आ गया है। स्वयं मोक्षस्वरूप है, इसलिए मोक्ष का कारण है और शुभ-अशुभभाव बन्धस्वरूप ही है, इसलिए बन्ध का कारण है। आहाहा! ऐसी बात अब। हजारों सामायिक हो, प्रौषध हो, सायंकाल प्रतिक्रमण करे, पश्चात् सबको कुछ न कुछ दे। फिर आठ-आठ वर्ष के लड़के आवें।

मुमुक्षु : रुपये-दो रुपये मिले न!

पूज्य गुरुदेवश्री : पहले इतना अधिक नहीं होता था। पहले साधारण होता था। पहले रुपये की कीमत थी न, परन्तु तब कुछ पताशा दे, पेड़ा दे, ऐसा साधारण दे। पुस्तक दे, आसन-अच्छा आसन दे। ऐसा देते थे। अभी तो दो-दो रुपये की कीमत क्या है? चार पैसे का रुपया! रुपया दे, दो रुपया दे, (इसलिए) वे प्रसन्न हों। सामायिक करने के लिए बहुत इकट्ठे हों। कहाँ सामायिक थी, बापू! आहा!

वे **अशुभकर्म को ही बन्ध का कारण मानकर, व्रत, नियम, शील, तप**

इत्यादि.. इत्यादि शुभभाव के प्रकार। (वे) **बन्ध का कारण होने पर भी..** वह शुभभाव बन्ध का कारण है। आहाहा! **उन्हें बन्ध का कारण न जानते हुए..** आहाहा! अभी तो यह कहते हैं कि व्यवहार दया, व्रत, तपादि निश्चय का साधन है। लो, ठीक! बहिरंग साधन तो उसमें जयसेनाचार्यदेव की टीका में भी (आता) है। बहिरंग साधन (कहा है)। वह निश्चय साधन करता है, तब राग की मन्दता को बहिरंग साधन का निमित्त का ज्ञान कराया है। जयसेनाचार्यदेव की टीका में है। समयसार! उसे पकड़े कि देखो! यह बहिरंग साधन (कहा है)। आहाहा!

अन्दर में भगवान शुभ-अशुभभाव से अत्यन्त भिन्न निराला (विराजमान है)। त्रिकाल पवित्रता का पिण्ड प्रभु, अकेला आत्मस्वभाव, जिसमें विभाव की गन्ध नहीं है। ऐसे स्वभाव को न प्राप्त करते हुए शुभभाव करके सन्तोष में आ जाने से... आहाहा! **उन्हें बन्ध का कारण न जानते हुए मोक्ष के कारणरूप में अंगीकार करते हैं..** आहाहा! यह शुभभाव भी मोक्ष का कारण है। आहाहा! अशुभ में से कहीं शुद्ध में जाया जाएगा? इसलिए शुभभाव है, (कारण है)। एक व्यक्ति और ऐसा कहता था, यह सीढ़ी है। यह शुभभाव में से शुद्ध में जाया जाता है, इसलिए शुभभाव कारण है। अरे रे! लहसुन खाते-खाते कस्तूरी का डकार आवे, ऐसा कहता है। कठिन बात है।

उन्हें **मोक्ष के कारणरूप में अंगीकार करते हैं..** शुभभाव तो ज्ञानी को आता है परन्तु वह बन्ध का कारण जानकर और दुःखरूप जानकर हेय जानता है। आहाहा! अपना जो चैतन्यस्वभाव नित्यानन्द प्रभु, ध्रुवस्वभाव जो नित्य प्रभु है और नित्य में भी सब गुण भी नित्य हैं। आहाहा! उन अनन्त-अनन्त गुण की राशि का नित्यपना जो प्रभु का है, उसके स्वभाव की ओर न जाकर.. आहाहा! (उस) राग की क्रिया को मोक्ष के कारणरूप से अंगीकार करते हैं। उस शुभक्रियाकाण्ड के भाव को... आहाहा! **मोक्ष के कारणरूप में उनका आश्रय करते हैं।** लो! वह शुभभाव आश्रय करनेयोग्य है, ऐसा (मानते हैं)। बारहवीं गाथा में जाना हुआ प्रयोजनवान है, ऐसा कहा न! उसके बदले उसका ऐसा अर्थ किया कि व्यवहार को सम्हालो! आहाहा! होता है, परन्तु वह जाननेयोग्य है, आदरणीय नहीं। होता है, जब तक पूर्ण वीतराग न हो, तब (तक) ऐसा भाव आता है परन्तु फिर भी वह दुःखरूप है और हेय है। उस काल में उसे उस प्रकार से है, वैसा जानना। ऐसी

सामायिक की खबर नहीं होती और यह सामायिक.. सामायिक.. सामायिक..। बाहर लड़के तूफान करते हैं।

मोक्ष के कारणरूप में उनका आश्रय करते हैं। बन्ध का कारण होने पर भी उन्हें बन्ध का कारण न जानते हुए.. आहाहा! व्रत, नियम, शील, तप इत्यादि। यहाँ तप (अर्थात्) यह बारह प्रकार के तप। अन्दर का तप है, वह अलग बात है। वह तो आनन्दस्वरूप में रमना, वह अन्तर तप है। वह निर्जरा का कारण है। बाकी ये सब अपवास (करे), वह सब बाह्य लंघन है। आहाहा! ऐसा वीतराग का मार्ग है।

मुमुक्षु : छठे गुणस्थान तक व्यवहार, मोक्ष का कारण नहीं है परन्तु सातवें गुणस्थान के बाद कारण है?

पूज्य गुरुदेवश्री : एक का एक, व्यवहार मोक्ष का कारण जरा भी नहीं है, बन्ध का कारण है। यह कहा न पहले।

बन्ध का कारण न जानते हुए मोक्ष के कारणरूप में.. माने, वह मिथ्यादृष्टि है। आहाहा! उसे **मोक्ष के कारणरूप में अंगीकार करते हैं..** उसका आश्रय करते हैं। आ जाते हैं, स्वभाव की दृष्टि है, शुद्ध चैतन्य की दृष्टि और ज्ञान है, तो भी उसमें स्थिर नहीं हो सकता, इसलिए शुभभाव आता है परन्तु उसका आश्रय नहीं है। उसे जाननेयोग्य जानकर छोड़ता है। यह तो आश्रय करता है कि इससे मुझे लाभ होगा। शुभ का अवलम्बन रहेगा तो मुझे लाभ होगा। आहाहा!

भावार्थ : कितने ही अज्ञानीजन.. कितने ही अज्ञानी लोग। **दीक्षा लेते समय..** मुख्य तो यहाँ दीक्षा की बात है न! **सामायिक की प्रतिज्ञा लेते हैं, परन्तु सूक्ष्म ऐसे आत्मस्वभाव की..** सूक्ष्म ऐसा आत्मस्वभाव। यह पुण्य-पाप, स्थूल है। आहाहा! **सूक्ष्म ऐसे आत्मस्वभाव की श्रद्धा, लक्ष्य तथा अनुभव..** लक्ष्य अर्थात् ज्ञान। वह **न कर सकने से, स्थूल लक्ष्यवाले वे जीव स्थूल संक्लेशपरिणामों को छोड़कर..** (अर्थात्) अशुभ को छोड़ते हैं। **ऐसे ही स्थूल विशुद्धपरिणामों में (शुभ परिणामों में) राचते हैं।** वापस **ऐसे ही..** ऐसा शब्द है न? आहा! ऐसे ही। जैसे अशुभभाव बन्ध का कारण है, वैसे ही शुभभाव है। आहाहा! इसमें बड़ा विवाद, बड़ा विवाद! आहाहा! अभी

तो सब गड़बड़ ही चलती है। व्यवहार की बातें होवे तो लोगों को ठीक पड़ता है... ओहोहो! ऐसी सेवा करो, इसका यह करो, देशसेवा, हिन्दी भाषा का प्रचार करो (तो) लाभ होगा। सब राग की और विकल्प की बातें हैं। आहाहा! उसमें उनका आश्रय करके धर्म माननेवाले.. आहाहा!

ऐसे ही स्थूल विशुद्धपरिणामों में (शुभ परिणामों में) राचते हैं। (संक्लेश-परिणाम तथा विशुद्धपरिणाम दोनों अत्यन्त स्थूल हैं;..) अत्यन्त स्थूल हैं। आहाहा! भगवान तो अन्दर विकारी परिणाम से अत्यन्त (भिन्न) सूक्ष्म.. सूक्ष्म.. बारीक है। आहाहा! वह अत्यन्त स्थूल परिणाम से पकड़ में आये, ऐसा नहीं है। आहाहा! वह दया, दान, व्रतादि शुभभाव है, (वे अत्यन्त स्थूल हैं)। बहुतों को तो अभी यही बात है। व्यवहार है, वह साधन है,.. व्यवहार है, वह साधन है। निश्चय भले साध्य है। आहाहा! यहाँ कहते हैं, व्यवहार है, वह बन्ध का कारण है; वह स्वभाव का साधन नहीं है। आहाहा! परन्तु क्या हो? अब बहुभाग अभी यह हो गया है और इन बनियों को फुरसत नहीं मिलती। जो सिर पर बैठे, वह जयनारायण! तुलना करके सत्य क्या है? असत्य क्या है? (उसकी परीक्षा नहीं करते)। आहाहा!

इस प्रकार वे-यद्यपि वास्तविकतया सर्वकर्मरहित आत्मस्वभाव का अनुभव ही मोक्ष का कारण है.. देखा? शुभ और अशुभभाव से रहित आत्मस्वभाव का अनुभवन मोक्ष का कारण है। आहाहा! **तथापि-कर्मानुभव के अल्पबहुत्व को ही बन्ध-मोक्ष का कारण मानकर..** आहाहा! अशुभ(भाव) है, वह बन्ध का कारण, शुभ (भाव) वह मोक्ष का कारण ऐसा (मानते हैं)। कर्मानुभव का बहुतपना-थोड़ा (पना)। अर्थात् अशुभ बहुत, शुभ थोड़ा, ऐसा दो में भेद करते हुए **बन्ध-मोक्ष का कारण मानकर..** अशुभ है, वह बन्ध का कारण है; शुभ है, वह मोक्ष का कारण है - ऐसा अज्ञानी मानता है।

व्रत, नियम, शील, तप इत्यादि.. रस का त्याग किया, इसने इसका त्याग किया, इतना रस नहीं खाते, ऐसा लेते हैं, अमुक लेते हैं.. आहाहा! **व्रत, नियम, शील, तप इत्यादि शुभकर्मों का मोक्ष के हेतु के रूप में आश्रय करते हैं।** उनका अवलम्बन लेते हैं।

गाथा–१५५

अथ परमार्थमोक्षहेतुं तेषां दर्शयति –

जीवादी–सद्दहणं सम्मत्तं तेसि–मधिगमो णाणं।
रागादी–परिहरणं चरणं एसो दु मोक्ख–पहो।।१५५।।

जीवादिश्रद्धानं सम्यक्त्वं तेषामधिगमो ज्ञानम्।
रागादि–परिहरणं चरणं एषस्तु मोक्ष–पथः।।१५५।।

मोक्षहेतुः किल सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्राणि। तत्र सम्यग्दर्शनं तु जीवादिश्रद्धानस्वभावेन ज्ञानस्य भवनम्। जीवादिज्ञानस्वभावेन ज्ञानस्य भवनं ज्ञानम्। रागादिपरिहरणस्वभावेन ज्ञानस्य भवनं चारित्रम्। तदेवं सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्राण्येकमेव ज्ञानस्य भवनमायातम्।

ततो ज्ञानमेव परमार्थमोक्षहेतुः।।१५५।।

अब जीवों को परमार्थ (वास्तविक) मोक्ष का कारण बतलाते हैं:–

जीवादिका श्रद्धान समकित, ज्ञान उसका ज्ञान है।
रागादि–वर्जन चरित है, अरु ये हि मुक्ती पंथ है।।१५५।।

गाथार्थ : [जीवादिश्रद्धानं] जीवादि पदार्थों का श्रद्धान [सम्यक्त्वं] सम्यक्त्व है, [तेषां अधिगमः] उन जीवादि पदार्थों का अधिगम [ज्ञानम्] ज्ञान है और [रागादिपरिहरणं] रागादि का त्याग [चरणं] चारित्र है;– [एषः तु] यही [मोक्षपथः] मोक्ष का मार्ग है।

टीका : मोक्ष का कारण वास्तव में सम्यक्दर्शन–ज्ञान–चारित्र है। उसमें, सम्यक्दर्शन तो जीवादि पदार्थों के श्रद्धानस्वभावरूप ज्ञान का होना–परिणमन करना है; जीवादि पदार्थों के ज्ञानस्वभावरूप ज्ञान का होना–परिणमन करना ज्ञान है; रागादि के त्यागस्वभावरूप ज्ञान का होना–परिणमन करना, सो चारित्र है। अतः इस प्रकार

सम्यक्दर्शन-ज्ञान-चारित्र तीनों एक ज्ञान का ही भवन (-परिणमन) है। इसलिए ज्ञान ही परमार्थ (वास्तविक) मोक्ष का कारण है।

भावार्थ : आत्मा का असाधारण स्वरूप ज्ञान ही है। और इस प्रकरण में ज्ञान को ही प्रधान करके विवेचन किया है। इसलिए 'सम्यक्दर्शन, ज्ञान और चारित्र - इन तीनों स्वरूप ज्ञान ही परिणमित होता है' यह कहकर ज्ञान को ही मोक्ष का कारण कहा है। ज्ञान है, वह अभेद विवक्षा में आत्मा ही है - ऐसा कहने में कुछ भी विरोध नहीं है, इसीलिए टीका में कई स्थानों पर आचार्यदेव ने ज्ञानस्वरूप आत्मा को 'ज्ञान' शब्द से कहा है।

गाथा - १५५ पर प्रवचन

अब जीवों को परमार्थ (वास्तविक) मोक्ष का कारण बतलाते हैं:- वास्तविक मोक्ष का कारण कौन है ? (वह बताते हैं)। इस गाथा (की) विद्यानन्दजी के साथ चर्चा हुई थी। कहाँ ? कलकत्ता न ? दिल्ली... दिल्ली ! दिल्ली ! सब सेठ थे। साहूजी शान्तिप्रसाद वे दिल्लीवाले थे, घड़ीवाले-जैना वॉच कम्पनी ! वे बहुत सब थे और यह प्रश्न हुआ था। इस १५५वीं गाथा का विद्यानन्दजी के साथ दिल्ली में (प्रश्न हुआ था)।

क्या कहते हैं ? देखो ! ऐसे **जीवों को परमार्थ (वास्तविक) मोक्ष का कारण बतलाते हैं:-** १५५।

जीवादी-सद्दहणं सम्मत्तं तेसि-मधिगमो णाणं।
रागादी-परिहरणं चरणं एसो दु मोक्ख-पहो।।१५५।।

जीवादिका श्रद्धान समकित, ज्ञान उसका ज्ञान है।
रागादि-वर्जन चरित है, अरु ये हि मुक्ती पंथ है।।१५५।।

टीका : मोक्ष का कारण वास्तव में सम्यक्दर्शन-ज्ञान-चारित्र है। उसमें,.. अब इस सम्यग्दर्शन में विवाद। अब विवादवाली गाथा है। **सम्यक्दर्शन तो जीवादि पदार्थों के श्रद्धानस्वभावरूप..** (वे लोग) ऐसा (कहते हैं) कि जीवादि पदार्थों का श्रद्धान होना, वह सम्यक्त्व है। ऐसा नहीं है, कहा। यह **जीवादि पदार्थों के श्रद्धान-स्वभावरूप ज्ञान का होना-परिणमन करना है;..** (अर्थात्) शुद्धस्वभाव का परिणमन

करना। अकेले जीवादि (पदार्थों की) श्रद्धा, व्यवहार नवतत्त्व की (श्रद्धा), वह तो व्यवहार है, राग है। जयसेनाचार्यदेव की, जयसेनाचार्यदेव ने टीका में लिखा है कि जीवादि (पदार्थ की) श्रद्धा व्यवहार सम्यक्त्व है और आत्मा का स्वभाव निश्चय है। टीका में दोनों डाले हैं। यहाँ तो अमृतचन्द्राचार्यदेव ने निश्चय डाला है।

परन्तु उन जीवादि पदार्थों का श्रद्धान अर्थात् क्या? कहा। दिल्ली में बात हुई। इन जीवादि श्रद्धानस्वभावरूप से ज्ञान का होना, कहा। देखो यह? कहा, यहाँ वजन है। आत्मा शुद्धस्वभाव है, उस आत्मा को यहाँ ज्ञान कहा है। वह आत्मा का-शुद्ध का होना, उसका नाम सम्यग्दर्शन है। मात्र जीवादि श्रद्धान की बात अकेली, ऐसा नहीं है। आहाहा! समझ में आया? सब सेठ थे परन्तु फिर सबको बाहर निकाला। एक जिनेन्द्र वर्णी थे। यह चर्चा निकाली थी कि ये जीवादि पदार्थ के श्रद्धानस्वभाव से आत्मा का परिणमित होना। अकेला जीवादि श्रद्धान का व्यवहार विकल्प है, वह नहीं। आहाहा! समझ में आया? यही गाथा एकान्त में पूछी थी। सब लोगों को बाहर निकालकर सेठियों को। कहा, यह जीवादि पदार्थ के श्रद्धानस्वभावरूप ज्ञान अर्थात् आत्मा का शुद्धस्वभाव, उसका परिणमना, उसका नाम सम्यग्दर्शन है। अकेली जीवादि श्रद्धा, नवतत्त्व की श्रद्धा, वह तो मिथ्यात्व है।

उसमें-कलश टीका में आ गया है। नवतत्त्व के भेदवाली श्रद्धा, वह तो मिथ्यात्व है। उसमें आ गया है। वह कलश-टीका नहीं? कितना है वह? छठा (कलश)। छठा, देखो! **संसार-अवस्था में जीवद्रव्य नवतत्त्वरूप परिणमा है, वह तो विभाव परिणति है। इसलिए नवतत्त्वरूप वस्तु का अनुभव मिथ्यात्व है।** वह बात यहाँ नहीं, कहा।

यहाँ तो आत्मा का आनन्द और ज्ञानस्वभाव जो शुद्ध है, उसका परिणमित होना, उसका होना, उसका नाम सम्यक्त्व है। मात्र जीवादि श्रद्धा-नवतत्त्व की श्रद्धा हुई, इसलिए सम्यक्त्व हुआ, ऐसा नहीं है। आहाहा! परन्तु क्या हो? मार्ग ऐसा है, और बाहर से (दीक्षा) लेकर बैठे हों, उन्हें करना क्या? वस्तु नहीं। स्वभाव की बात है नहीं। इसलिए उस क्रियाकाण्ड में कहीं मनवाना है। उसमें-व्यवहार में मनाये बिना दूसरा उपाय नहीं है। आहाहा!

यहाँ तो कहते हैं कि जीवादि पदार्थ (कहकर) भले जीवादि लिये, परन्तु उनकी श्रद्धा स्वभावरूप से-उनके श्रद्धान के स्वभावरूप से आत्मा का परिणमित होना। आत्मा निर्विकल्प श्रद्धारूप से परिणमित हो, उसे सम्यग्दर्शन कहते हैं। आहाहा! अनादि के

अकेले भेदवाले नवतत्त्व को माने, वह नहीं। आहाहा! और ये नव के नव तत्त्व लो— संवर, निर्जरा और मोक्ष, परन्तु उन्हें भी बहिर्तत्त्व कहा है। नियमसार ३८वीं गाथा। वे बहिर्तत्त्व हैं, (क्योंकि) पर्याय है न! आहाहा! इसलिए उस पर लक्ष्य नहीं; लक्ष्य तो त्रिकाली भगवान के ऊपर लक्ष्य से जो आत्मा का शुद्धस्वरूप है, जो उसका सत्त्व है, सत् का सत्त्व है, उस सत्त्वरूप से, पर्याय सत्त्वरूप से परिणमे, उसे यहाँ सम्यग्दर्शन कहते हैं। आहाहा! कठिन काम है, बापू! मार्ग बहुत ऐसा है। आहाहा! अभी सुनने को मिलना मुश्किल पड़ता है। सुनने में भी इसे वापस व्यवहार से परलक्ष्यी बैठना (कि) वस्तु यह है, (वह भी कठिन पड़ता है)। आहाहा!

अकेला भगवान आत्मा, अनन्त गुण की पवित्रता का पिण्ड प्रभु! आहाहा! वह अनन्त गुण जो पवित्र हैं, वे पर्यायरूप से-पवित्ररूप से परिणमित हों। आहाहा! वह द्रव्यरूप से पवित्रत, गुणरूप से पवित्र और पर्यायरूप से भी वह पवित्ररूप से-निर्दोषरूप से-निर्विकल्परूप से-आनन्दरूप से, शान्तिरूप से, स्वभावरूप से, ज्ञान के परिणमनरूप से हो, उसे सम्यग्दर्शन कहते हैं। आहाहा! ऐसी सम्यग्दर्शन की व्याख्या!

श्वेताम्बर में ऐसा आता है, २८वीं गाथा, २८ उत्तराध्ययन! 'भावेणसदहंत समंत...' इसका अर्थ किया हो, अन्तःकरण से श्रद्धान करे, उसे समकित (कहते हैं) परन्तु अन्तःकरण अर्थात् तो मन (होता है)। २८वाँ अध्ययन है। बड़ी व्याख्या चलती थी। संवत् १९५० में कौन सा वर्ष कहा? (संवत्) १९७४! राजकोट में चातुर्मास था (संवत्) १९८० के वर्ष! बोटाद में लोग तो बहुत (आवें), हजारों लोग इकट्ठे हों। उसमें यह बात चली थी। भाई! यह सम्यग्दर्शन अर्थात् क्या? अर्थात् यह संक्षेप रुचि करके बैठे हैं, इसलिए समकित है। संक्षेप रुचि आता है या नहीं? और वापस नव तत्त्व के नाम लेकर 'भावेणसदहंत..' शुद्ध अन्तःकरण से श्रद्धान करे, वह समकित। अन्तःकरण अर्थात् यहाँ तो मन (अर्थ होता) है।

यह तो अन्तरस्वरूप भगवान आत्मा, शुभ-अशुभ के राग से भिन्न है, वैसा स्वभाव का परिणमन होना, इसका नाम सम्यग्दर्शन है। आहाहा! है? यह पूरा दूसरी लाईन का अर्थ है। **मोक्ष का कारण वास्तव में सम्यक्दर्शन-ज्ञान-चारित्र है। उसमें,..** मोक्ष का कारण जो यह तीन है, उसमें **सम्यक्दर्शन..** उसे कहते हैं, मोक्ष के कारणरूप का सम्यग्दर्शन

उसे कहते हैं.. आहाहा! कि **जीवादि पदार्थों के..** श्रद्धा, उसके स्वभाव से, श्रद्धा के स्वभाव से, जैसी श्रद्धा त्रिकाली शुद्ध है, श्रद्धा त्रिकाली शुद्ध है। श्रद्धा नाम का त्रिकाली गुण है न! उसके **श्रद्धानस्वभावरूप..** आहाहा! आत्मा का परिणमित होना। आहाहा! आत्मा निर्विकल्परूप से राग के आश्रय बिना पूर्णानन्द का नाथ प्रभु '**भूदत्थमस्सिदो खलु**' इस भूतार्थ का-त्रिकाल का आश्रय लेकर जो सम्यग्दर्शन स्वभावरूप परिणमित हो, वह स्वभावरूप परिणमित हो, वहाँ आनन्द के साथ शान्ति (आदि) सब है। आहाहा! उसे यहाँ सम्यग्दर्शन कहा है।

ज्ञान का होना.. यहाँ कहा। जोर यहाँ है। अकेली जीवादि पदार्थ की श्रद्धा, ऐसा नहीं। आहाहा! उसमें ज्ञान अर्थात् आत्मा के स्वभाव का होना (अर्थात्) आत्मा के स्वभाव का परिणमना। शुभभाव से भिन्न शुद्ध आत्मा के स्वभाव का शुद्धरूप से परिणमना, शुद्धरूप से होना, उसे सम्यग्दर्शन कहते हैं। यह तो अभी इकाई की पहली बात है। आहाहा! है? उसका नाम सम्यग्दर्शन है। ऐसे जीवादि श्रद्धा तो योगसार में आती है, अन्यत्र भी आती है। जीवादि श्रद्धा है, वह व्यवहार श्रद्धा है। निश्चय श्रद्धा तो शुद्धस्वभाव का परिणमित होना, वह निश्चय है। आता है न! उसमें-पाहुड़ में (आता है)। जीवादि श्रद्धा वह व्यवहार है, निश्चय तो स्वभाव का परिणमित होना, वह है। वह यहाँ निश्चय है। आहाहा!

जिसे यह ख्याल में नहीं, सम्यग्दर्शन की स्थिति कैसी होती है और किसके आश्रय से होती है? और वह होवे तो उसकी श्रद्धा कैसी होती है? उस शुद्धस्वभाव का परिणमन होना, वह उसका सम्यग्दर्शन है। शुभ का परिणमन होना, वह तो कर्मचक्र का (परिणमन) है। आहाहा! निर्णय करने का, तुलना करने का समय मिलता नहीं और जिन्दगी चली जाती है। आहाहा!

मुमुक्षु : तत्त्वों की श्रद्धा, ऐसा है?

पूज्य गुरुदेवश्री : एकवचन है। अनेक वचन (बहुवचन) नहीं है। जीवादि श्रद्धा का एकवचन है। जीव की श्रद्धा होने पर उसमें उनकी श्रद्धा आ गयी। उसमें नहीं, ऐसी साथ में श्रद्धा आ जाती है। ज्ञानप्रधान कथन है। आहाहा! 'तत्त्वार्थश्रद्धानं सम्यग्दर्शनम्'। मोक्षमार्गप्रकाशक में यही पूरा लिया है। मोक्षमार्गप्रकाशक में तो यह नवतत्त्व की श्रद्धा, उसे सम्यग्दर्शन (कहा है)। वे नवतत्त्व इस प्रकार से हैं।

एक जीवस्वभाव का श्रद्धान होकर दूसरी सब पर्यायें उसमें नहीं है, ऐसा ज्ञान होकर श्रद्धा हो, उसका नाम सम्यग्दर्शन है। मोक्षमार्गप्रकाशक में तो तत्त्वार्थश्रद्धानं सम्यग्दर्शनम् है न! तत्त्वार्थ के नाम तो नौ हैं, भले वहाँ सात दिये हैं। जीव, अजीव, आस्रव, बन्ध, संवर, निर्जरा और मोक्ष परन्तु उनमें एकवचन है। एकवचन अर्थात् नौ में से एकरूप की जो भेदरहित श्रद्धा (होना, वह सम्यग्दर्शन है)। आहाहा! सात का भेद भी जिसमें नहीं है। '**भूदत्थेणाभिगदा**' १३वीं गाथा (में) आता है न '**भूदत्थेणाभिगदा**' भूतार्थ से जाने हुए नवतत्त्व को अर्थात् आत्मा को भूतार्थ से जानने पर नवतत्त्व ज्ञात होते हैं अन्दर। आहाहा!

इसलिए यहाँ (कहा कि) **मोक्ष का कारण वास्तव में..** वास्तव में। **सम्यक्दर्शन-ज्ञान-चारित्र है।** इस वास्तव की यह व्याख्या आती है। उसमें वास्तव में **सम्यक्दर्शन..** उन **जीवादि पदार्थों के श्रद्धानस्वभावरूप..** आत्मा का परिणमना, निर्विकल्परूप से परिणमना। आहाहा! भेदरहित अभेदरूप से परिणमना। आहाहा! वह सम्यग्दर्शन है। सेठों को बहुत तुलना करने की वह (दरकार) नहीं होती। पैसा खर्च करे, दान दे, इसलिए मानों धर्म हो गया, ऐसा मानते हैं।

साहूजी बहुत पैसा देते थे। हमारी ८७ वीं (जन्म-जयन्ती) वहाँ थी न! मुम्बई में ८७ वीं जन्म-जयन्ती थी, उस समय ८७ हजार दिये थे। तीर्थ में! तीर्थ फण्ड में ८७ हजार दिये। वह ८७वीं जन्म-जयन्ती थी, (इसलिए) ८७ हजार (दिये थे)। लोगों को ऐसा हो जाता है कि आहाहा! ८७ हजार क्या, ८७ लाख दे तो भी क्या? उसमें राग मन्द किया हो तो पुण्य है, परन्तु कीर्ति के लिए और दुनिया मुझे सम्मान दे, यह होवे तो वह पाप है। यहाँ तो यह बात है। आहाहा!

अब सम्यग्ज्ञान किसे कहना? **जीवादि पदार्थों के ज्ञानस्वभावरूप ज्ञान का होना..** आहाहा! शास्त्र का ज्ञान और यह ज्ञान, वह नहीं। जीवादि नौ पदार्थों के ज्ञानस्वभावरूप (होना)। उसका जो आत्मस्वभाव है, उस आत्मस्वभावरूप परिणमना। उस ज्ञानस्वभावरूप ज्ञान का होना, आत्मस्वभावरूप आत्मा का परिणमना। आहाहा! वह ज्ञान है, बाकी यह सब ज्ञान बाहर के व्याकरण और संस्कृत, वह कोई ज्ञान नहीं है। आहाहा! शास्त्रज्ञान, ग्यारह अंग का ज्ञान, वह कोई ज्ञान नहीं है।

यहाँ तो आत्मा ज्ञानमूर्ति प्रभु है, उस ज्ञानरूप से परिणमे, ज्ञानरूप से ज्ञाता का ज्ञान परिणमे, उसका नाम ज्ञान है। आहाहा! बाहर के शास्त्र के पठन-बठन, (वह कोई ज्ञान नहीं है)। आया है, परमात्मप्रकाश में आया है। भाव के अवलम्बे सूत्र का अभ्यास करना। आवे। आहाहा! परन्तु वह तो भगवान चैतन्यस्वरूप है, जिसमें पूरा ज्ञान भरा है। शास्त्र के शब्दों में कहाँ ज्ञान भरा है? वह तो शब्दज्ञान है। वह तो शब्द का ज्ञान है। आहाहा! यह तो आत्मज्ञान। आत्मज्ञान किसे कहते हैं? कि जिसे राग का तो नहीं परन्तु उसकी पर्यायसम्बन्धी का भी नहीं। आहाहा!

आत्मज्ञान! आत्मा जो ज्ञानस्वरूप त्रिकाली ध्रुव है, उसका ज्ञान, उसे ज्ञान कहा जाता है। आहाहा! है? **जीवादि पदार्थों के ज्ञानस्वभावरूप..** आत्मस्वभावरूप आत्मा का होना, परिणमना। आहाहा! यह आत्मा आनन्द और ज्ञानस्वभावरूप स्वभावरूप परिणमे, उसे ज्ञान कहते हैं। आहा! दूसरे को बुलाना आया और बोलना आया तथा समझाना आया, इसलिए ज्ञान है, यह ज्ञान की व्याख्या ही नहीं है। आहाहा! बहुत कठिन काम।

जीवादि पदार्थ.. इसमें जीव-अजीव सब आया न? पुण्य-पाप, आस्रव, संवर, निर्जरा, बन्ध और मोक्ष। सबका ज्ञान है, वैसा ज्ञानरूप परिणमना। आत्मा (का)ज्ञानरूप परिणमना। आहाहा! उसका नाम ज्ञान कहने में आता है। विशेष कहेंगे...

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)